लेख

स्कूलों में दलित-आदिवासी बच्चों का सच

विमला रामचंद्रन, तारामणि नाओरेम

यह आम सच्चाई है कि हाशिए पर बसने वाले सामाजिक समूहों के बच्चे दूसरे बच्चों की तुलना में अधिक स्कूली पढ़ाई छोड़ देते हैं और इन गरीब वर्गों के शिक्षा संबंधी अनुभव सकारात्मक कम ही होते हैं। शोध से भी स्कूलों में होने वाले लैंगिक अलगाव और बहिष्कार का सच उजागर हुआ है परन्तु केन्द्रिय व राज्य शिक्षा विभाग इस सच्चाई को स्वीकार नहीं करते। इसलिए जब सर्व शिक्षा अभियान ने भारत के छः राज्यों— आंध्रप्रदेश, असम, बिहार, ओडिशा, मध्य प्रदेश व राजस्थान में शोध अध्ययन के ज़रिए स्कूली अलगाव और शिरकत का निरीक्षण किया तो इस प्रयास को बेहद सराहना मिली।

बच्चों की स्कूल तक पहुंच, गतिविधियों में भागीदारी, सीखना, बढ़ना और आत्म-विश्वासी बनने की क्षमता अनेक कारणों पर निर्भर करती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति और शिक्षा के अधिकार ने सभी बच्चों को समानता, गरिमा और प्यार के साथ आगे बढ़ने का हक़ दिया। परन्तु शिक्षा के मायने सिर्फ़ पढ़ने-लिखने से नहीं है बल्कि ज़िन्दगी में आगे बढ़ने के लिए सक्षम बनने से भी है और इस लिहाज़ से असमान और भेदभावपूर्ण व्यवहार तथा अलगाव और भागीदारी के मुद्दे बच्चों के भविष्य को प्रभावित करते हैं।

अध्ययन की प्रक्रिया व विस्तार

यह गुणात्मक अध्ययन छः राज्यों के 120 स्कूलों में कक्षा चार से सात के बच्चों के साथ किया गया। चार सदस्यों की टीम ने हर स्कूल में तीन दिन बिताए, जिसमें दोपहर व शाम का समय युवा बच्चों व उनके माता-पिता के साथ बातचीत में बिताया गया। भेदभाव (सामाजिक व लैंगिक) जांचने के लिए कक्षा व स्कूली निरीक्षण, शिक्षकों के साथ साक्षात्कार व फ़ोकस ग्रुप चर्चाएं तथा चौथी से सातवीं कक्षा के बच्चों के साथ गतिविधियों जैसे साधन उपयोग में लाए गए।

कुछ खास विश्लेषण

अधिकांश इलाकों में सरकारी माध्यमिक स्कूल सबसे गरीब बच्चों की ज़रूरतों के संबोधन के लिए स्थापित किए गए थे पर हर राज्य में कुछ विशेष बातें सामने आई हैं। राजस्थान के स्कूलों में सभी वर्गों के बच्चे पाए गए जबकि आंध्र प्रदेश में अधिकतर बच्चे पिछड़े, दलित व आदिवासी वर्गों से थे। असम व ओडिशा में गांवों के बीच भिन्नता स्पष्ट नज़र आती है। यहां चाय बागान समुदाय, गैर असमी पलायनकर्ता समूह और बोडो, कर्बी, चकमा और मिशिंग आदिवासी वर्ग अलग-अलग क्षेत्रों में बसे हैं और उनके बच्चे अक्सर सजातीय स्कूलों में पढ़ते हैं। भारत के सामाजिक मानकों को देखते हुए राजस्थान के अलावा सभी राज्यों में दलितों के साथ आदिवासियों की तुलना में अधिक प्रत्यक्ष भेदभाव देखने को मिला। जिन इलाकों में दलितों की संख्या अधिक थी वहां के व्यवहार और रवैयों में उन गांवों की तुलना में जहां दलित अल्पसंख्यक थे साफ़ अंतर देखने को मिले।

इस अध्ययन से हमें यह भी देखने को मिला कि हमें भागीदारी और अलगाव को अलग-अलग बिन्दुओं से समझने की ज़रूरत है। बाहर से (कौन किस तरह के स्कूल में जाता है, अंदर से स्कूल में क्या होता है) तथा समाज के नज़रिए से (कौन प्रत्यक्ष है, कौन अदृश्य) इसके अलावा समाज और सामाजिक मानकों का स्कूल पर प्रभाव, शिक्षकों की सोच व व्यवहार तथा अभिभावकों व सामुदायिक नेताओं की भागीदारी को भी समझने की ज़रूरत है। दलित व आदिवासियों द्वारा अपने अधिकारों के राजनीतिक और सामाजिक दावे भी रवैयों को प्रभावित करते हैं जैसा कि आंध्र प्रदेश, बिहार व राजस्थान में देखने को मिला। बिहार व राजस्थान में दलित व आदिवासी सामाजिक आंदोलन के कारण जाति-आधारित भेदभाव प्रखर रूप से दिखाई नहीं देता जबकि राजस्थान में भेदभाव बिल्कुल सामने नज़र आता है।

भाषा

भाषा भी अलगाव बढ़ाने का एक महत्वपूर्ण कारण है। ओडिशा में शिक्षक आदिवासी भाषाएं नहीं जानते और इसलिए उन्हें बच्चों के साथ बातचीत करने में मुश्किलें आती हैं। दूसरे राज्यों जैसे असम व आंध्र प्रदेश में पलायनकर्ता बच्चों को भी भाषा संबंधी समस्याओं से जूझना पड़ता है। राजस्थान में भी स्थानीय भाषाएं स्कूल में पढ़ाई जाने वाली भाषा हिन्दी से काफ़ी अलग हैं।

शिक्षक व अभिभावक

सभी राज्यों में उपयुक्त शिक्षकों की नियुक्ति की कमी देखने को मिली। ऐसा भी था कि नियुक्त शिक्षक रोज़ाना ड्यूटी पर नहीं आते थे। स्कूल के प्रशासन में बच्चों के माता-पिता खासकर दलित व पिछड़े वर्ग के बच्चों के अभिभावकों की कोई भागीदारी नहीं थी। वे स्कूल में होने वाले अलगाव से परिचित तो थे पर उसे नियति या न बदली जाने वाली स्थिति मानते थे।

आम धारणाएं

सभी राज्यों में शिक्षकों का आम विचार था कि हाशियेदार सामाजिक समूहों के बच्चे स्कूल में पिछड़े रहते हैं। परन्तु इन्हीं स्कूलों के आंकड़ों से पता चला कि ये धारणा गलत थी और पिछड़े वर्गों से आने वाले बच्चे पढ़ाई में अच्छा प्रदर्शन कर रहे थे। शिक्षकों का मानना था कि कुछ 'होशियार' दलित व आदिवासी बच्चे मौजूद थे परन्तु शिक्षकों के उनको लेकर विचार पूर्वाग्रह ग्रस्त थे। सभी स्कूलों में बच्चों की नियमित हाज़िरी एक गंभीर विषय था जिसके कई कारण जैसे बीमारी, घर का काम, पलायन, मज़दूरी आदि बताए गए। अधिक गैरहाज़िरी के कारण ये पिछड़े वर्ग के बच्चे और अधिक पिछड़ जाते हैं और शिक्षक इन पर कोई ध्यान नहीं देते। ज़्यादातर शिक्षक केवल आगे बैठने वाले होशियार बच्चों पर ध्यान दे रहे थे जिससे अलगाव बढ़ा था।

दाखिला व हाज़िरी

सभी छः राज्यों में पिछड़ी जातियों से आने वाले बच्चों की संख्या उनके लिए नियत कोटा से कहीं ज़्यादा थी। यह भी पाया गया कि स्कूल के रिकार्ड में दर्ज हाज़िरी और वास्तविक मौजूद बच्चों की संख्या में खासा अंतर था। ग़रीब, भूमिहीन, दिहाड़ी मज़दूर परिवारों के बच्चे खासकर लड़कियां स्कूल से गायब थीं या अक्सर देर से पहुंचती थीं। इस कारण इन बच्चों की स्कूल की गतिविधियों में सक्रिय भागीदारी नहीं थी।

आधारभूत सुविधाएं तथा बच्चों की पहुंच

सभी राज्यों के स्कूलों में आधारभूत सुविधाएं खराब थीं। शौचालय, कक्षा सभी खस्ता हालत में थे। कुछ स्कूलों में यह साफ़ निकलकर आया कि पानी, शौचालय और सफ़ाई के तरीके जाति व सामुदायिक पहचान आधारित भेदभाव

और अलगाव के गढ़ थे। यह भी उजागर हुआ कि जब कोई प्रतिबद्ध शिक्षक स्थापित सामाजिक व्यवहारों का विरोध करते हैं तो स्कूल में एक समानता का माहौल बनाया जा सकता है।

पानी

शोध ने उजागर किया कि राजस्थान के अधिकांश स्कूलों में सवर्ण जाति के बच्चे पहले पानी पीते थे व अपने खाने के बर्तन धोते थे। मीणा जाति के बच्चे मटके व हैंडपम्प का इस्तेमाल नहीं करते थे। दूसरे बच्चे उन्हें पानी निकालकर देते थे। असम व ओडिशा में पानी की कोई व्यवस्था नहीं थी और बच्चे पीने का पानी घर से लाते थे। मध्य प्रदेश के स्कूलों में ऊंची जाति के बच्चे शिक्षकों के लिए पानी लाते थे। यहां पर दलित वर्ग के बच्चे सवर्णों के पानी पीने के बाद ही पानी पीते थे और पानी भरने के बर्तनों से दूर रहते थे। बिहार में भी पीने के पानी को लेकर भेदभाव साफ़ था और लड़कियां लड़कों के पानी पीने के बाद ही हैंडपम्प से पानी पीती थीं।

शौचालय

जहां तक शौचालय का सवाल है जाति व लैंगिक भेदभाव व्याप्त था। जहां सफ़ाई कर्मचारी मौजूद थे वहां पिछड़े वर्ग की लड़कियां सफ़ाई के लिए पानी भरती थीं। कई स्कूलों में शिक्षक शौचालय में ताला लगाकर रखते थे जबकि उसकी सफ़ाई पिछड़े वर्ग की लड़कियां करती थीं।

खेलकूद व पुस्तकालय

स्कूलों में बच्चों के खेलने-कूदने की सुविधाएं नगण्य थीं और जिन जगहों पर खेलने का थोड़ा बहुत सामान मौजूद था वहां केवल 'मेधावी' लड़के उनका उपयोग कर सकते थे। इसी तरह पुस्तकालय और किताबें भी केवल शिक्षकों के लिए ही थी। आंध्र प्रदेश के एक स्कूल में किताबें बच्चे घर ले जा सकते थे पर वहां शिक्षक अनुसूचित जाति के बच्चों को किताबें घर के लिए नहीं देते थे क्योंकि उनको 'गंदा' समझा जाता था और उन्हें लगता था कि किताब 'खराब' हो जाएगी।

स्कूली गतिविधियों में भागीदारी

अध्ययन के दौरान प्रजातंत्रीय भागीदारी के कमी उभरकर आई। स्कूल के काम जैसे मैदान में झाड़ू, खाने की जगह का रख रखाव, शौचालय की सफ़ाई का बंटवारा शिक्षकों के ज़िम्मे था। अच्छे काम जैसे सुबह की प्रार्थना, अखबार पढ़ना, चाय बनाने जैसे काम शिक्षक समुदाय के चलन और अपनी व्यक्तिगत राय के अनुसार तय करते थे। इसमें जाति व लैंगिक भेदभाव साफ़ नज़र आता था। शिक्षक की पसंद के अनुसार अच्छे समझे जाने वाले काम उनके प्रिय व मेधावी बच्चों के ज़िम्मे थे व गरीब व हाशियेदार वर्गों के बच्चे कमतर काम जैसे साफ़-सफ़ाई करते थे।

सज़ा और यौन हिंसा

हालांकि हमने जाति भेदभाव और शारीरिक सज़ा के बीच कोई सीधा संबंध नहीं पाया गया परन्तु मौखिक प्रताड़ना में जाति/समुदाय संबंधी पहचान की भर्त्सना शामिल थी। ज़्यादातर लड़कियों को केवल डांटा जाता था जो समाज में महिलाओं के प्रति रवैयों का संकेतक था। आंध्र प्रदेश के तीन स्कूलों में यौन उत्पीड़न की बात की गई परन्तु माता पिता ने इस शिकायत का खंडन किया।

दोपहर के भोजन से जुड़े मानक

दोपहर का भोजन एक ऐसा विषय जिसमें न चाहते हुए भी सामाजिक व सामुदायिक पूर्वाग्रह उभरकर आए जैसे

रसोइयों की नियुक्ति, (ऐसी जाति से जिससे सभी बच्चे खाना खा सकें) बैठने की व्यवस्था, पीने के पानी व बर्तन धोने की व्यवस्था।

लगभग सभी राज्यों में सम्पन्न घरों के बच्चे स्कूल में दोपहर का खाना नहीं खाते थे। अधिकांश जगहों पर पिछड़ी जाति के रसोइए खाना पकाते थे और अनुसूचित जाति के व्यक्ति उनकी मदद करते थे। ओडिशा में लड़कियां प्रचलित मान्यताओं के कारण घर से बाहर खाना नहीं खाती थीं। राजस्थान के मीणा जाति के बच्चे अपनी जाति के रसोइए के हाथ से पकाया खाना ही खाते थे। आंध्र प्रदेश के गोंदी और लंबादा आदिवासी बच्चे खाना नहीं खाते थे क्योंकि रसोइया पिछड़ी या सवर्ण जाति का था। खाने के समय अधिकतर बच्चे अपने जाति आधारित समूहों में बैठते थे। हालांकि शिक्षक उन्हें ऐसा करने के लिए नहीं कहते थे परन्तु वे उन्हें एक साथ मिलकर खाने के लिए भी प्रोत्साहित नहीं करते थे। राजस्थान, आंध्रप्रदेश, असम राज्यों में लड़के व लड़कियां अलग-अलग बैठते थे।

बच्चों के बीच मेलजोल व उनका नज़रिया

लगभग सभी राज्यों में बच्चे 'अपने जैसे बच्चों' के साथ बैठते व खेलते थे। आंध्र प्रदेश के सभी स्कूलों में बच्चों ने कहा कि लड़कियां सफ़ाई करती हैं और लड़के कूड़ा फेंकते हैं। एक स्कूल के बच्चों ने बताया कि अनुसूचित जाति के बच्चे कुएं से पानी नहीं पी सकते। असम के बच्चों ने बताया कि शिक्षक आदिवासी बच्चों के लिए अभद्र भाषा का प्रयोग करते हैं। बिहार में बच्चों ने इस बात को माना कि हाशियेदार समुदाय के बच्चे सफ़ाई का काम करते हैं और पीने का पानी पहले सवर्ण वर्ग के बच्चे पीते हैं। मध्य प्रदेश के बच्चों के बीच अपनी जाति को लेकर चेतना थी और हाशियेदार समुदाय के बच्चों के साथ पानी को लेकर भेदभाव प्रचलित था।

क्या हम इस भेदभाव और अलगाव को खत्म कर सकते हैं?

शोध में आंध्र प्रदेश के एक स्कूल के सकारात्मक माहौल को भी उजागर किया गया है जहां सभी बच्चे एक समानता आधारित परिवेश में पढ़ रहे हैं। शिक्षक सभी बच्चों के साथ अच्छा व्यवहार करते हैं और सभी की समान भागीदारी को प्रोत्साहन दिया जाता है। यह एक अच्छा उदाहरण है।

अपने संविधान को मार्गदर्शक मान कर शिक्षकों, प्रशासकों व समुदाय के नेताओं को समझाया जाना चाहिए कि भेदभाव एक अपराध है जिसके ख़िलाफ़ क़ानूनी कार्यवाही की जा सकती है। सभी स्कूलों में एक आचार संहिता लिखित रूप से जारी की जानी चाहिए। बच्चों के साथ एक समता आधारित समाज के निर्माण के लिए सामूहिक गतिविधियां चलाई जानी भी आवश्यक हैं। वैकल्पिक मंच, सभाओं और कार्यशालाओं के माध्यम से शिक्षकों सामुदायिक नेताओं को भेदभाव मुक्त स्कूल बनाने की ज़रूरत पर बल दिया जाना चाहिए। सबसे महत्वपूर्ण यह है कि हम स्कूलों में व्याप्त भागीदारी और अलगाव के मानकों को गंभीरता से देखें और हर स्तर पर काम करते हुए इन्हें बदलने का प्रयास करें। हमारे पास कोई आसान, छोटा रास्ता नहीं है और सरकार व नागरिक समाज को इस मुद्दे को पूरी गंभीरता से देखते हुए हर संदर्भ में इसे संबोधित करना होगा।

विमला रामचंद्रन *एन.सी.पी.ए., नई दिल्ली से जुड़ी हैं।*
तारामणि नाओरेम *मानव संसाधन विकास मंत्रालय की सलाहकार हैं।*
(मूल अंग्रेज़ी लेख का सारांश: जुही जैन)